P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-1* April- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक व्यवस्था (भारतीय राजनीति के विशेष सन्दर्भ में एक संक्षिप्त अध्ययन)

इरसाद अली खॉ
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय बॉंगड़ पी.जी. महाविद्यालय,
डीडवाना,राजस्थान , भारत

सारांश

राजनीति विज्ञान के जनक महान यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने अपनी पुस्तक पॉलिटिक्स में लिखा है कि ''राज्य का जन्म हुआ है जीवन के लिए तथा एक अच्छे व सुखी जीवन के लिए वह जीवित है, (कायम है)।'' अरस्तू के गुरू प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में बताया कि अच्छे जीवन की प्राप्ति ही राज्य तथा व्यक्ति के जीवन का महानतम उद्देश्य हैं। भारतीय राजनीतिक चिन्तन के अग्रज कौटिल्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में प्रतिपादित किया कि राज्य का उद्देश्य प्रजा की सुरक्षा एवं कल्याण को सुनिश्चित करना है। आजादी के पश्चात् भारत में लोकसभा के आज तक के आम चुनावों का सफर तय करने के बाद भी शासक वर्ग राज्य के इस उद्देश्य को साकार नहीं कर सका है। स्वतंत्र भारत का संविधान निर्मित करते समय हमारे राष्ट्र नायकों ने स्वप्न संजोया था कि भारत को संसदीय लोकतंत्र की राह पर राजनीतिक विकास की अनवरत यात्रा करनी है किन्तु हम इस बात पर भले ही गर्व करें कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जिन नवस्वतन्त्र अफ्रीकी व एशियाई देशों ने संसदीय लोकतंत्र को अपनाया था तथा कुछ ने संसदीय व्यवस्था को छोड़कर तानाशाही के मार्ग को अपना लिया जबकि भारत का संसदीय लोकतंत्र 70 वर्ष पूर्ण कर चुका हैं लेकिन वस्तु स्थिति यह है कि आज हम उसी बिन्दु पर वापस पहुंच गये हैं, जहाँ से राजनीतिक विकास की यात्रा प्रारम्भ हुई थी। कुछ वर्षों पूर्व कांग्रेस के करिश्मे की समाप्ति के बाद विशेष रूप से 90 के दशक में मिली–जुली विरोध की राजनीति द्वारा स्थापित साझा सरकारों के असफल प्रयोग के बाद केन्द्र में त्रिशंकु संसद व शासन की अस्थिरता के कारण हमारी शासन व्यवस्था लड़खड़ा रही थी। 2014 में पुनः एक दलीय शासन व्यवस्था के रूप में पुनः देखने को मिली है। आज भारतीय राजनीति में संकट केवल सुशासन का ही नही अपितु स्वयं शासन व्यवस्था की पारदर्शिता एवं जवाबदेही ही खतरे में दिखाई देती हैं।

मुख्य शब्द : संसदीय लोकतंत्र, तानाशाही, राजनीतिक विकास, राजनीतिक व्यवस्था, पारदर्शिता, जवाबदेही, सुशासन, नोटबंदी, जीएसटी, भूमिका का विभिन्नीकरण, उपव्यवस्था की स्वायतता, लौकिकीकरण, समानता, क्षमता, विभिन्नीकरण, निवेश–निर्गत, पर्यावरण एवं प्रतिसम्भरण इत्यादि।

प्रस्तावना

राजनीतिक विकास शब्दावली का सर्वप्रथम राजनेताओं और नीति निर्माताओं ने किया था। उसके बाद इसका प्रयोग अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों ने किया। फिर इसका प्रयोग राजनीतिक शास्त्रियों ने किया। आधुनिक समय में राजनीतिक विकास शब्दावली अथवा अवधारणा आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त का अभिन्न अंग हैं। 1960 का दशक गैर–पश्चिमी देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं के अध्ययन का दशक कहा जाता हैं। इस दशक में राजनीतिक शास्त्रियों ने गैर–पश्चिमी देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं और प्रक्रियाओं का इतना अधिक अध्ययन किया कि इन देशों सम्बन्धी अध्ययन (अनुसन्धान या शोध) की बाढ़ आ गई। उदाहरण जेम्स एस. कौलमेन ने नाइजीरिया का डबल्यू हार्वड हिगिन्स ने श्रीलंका का लियोनार्ड बाइन्डर ने पाकिस्तान का, हर्बर्ट फीथ ने इण्डोनेशिया का, लूसियन डबल्यू पाई[2] ने बर्मा (म्यांमार) का, माइरन वीनर ने भारत का डेविड एप्टर ने घाना का और अन्य अनेक विद्वानों ने अन्य अनेक गैर–पश्चिमी देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओ और प्रक्रियाओं का अध्ययन किया। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजनीतिक विकास की अवधारणा के विकास में मुख्य भूमिका अमरीकी राजनीति शास्त्रियों

की रही, जिन्होनें ''तृतीय विश्व'' (एशिया, अफ्रीका, लातीन अमरीका के नवस्वतन्त्र देश) के देशों की राजनीतिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करने के लिए इस अवधारणा का विकास किया। राजनीतिक विकास की अनेक विद्वानों निम्नलिखित परिभाषायें दी है जो निम्न है– आमण्ड और पावेल[3] के अनुसार ''राजनीतिक विकास राजनीतिक संरचनाओं की अभिवृद्धि विभिन्नीकरण एवं राजनीतिक संस्कृति का बढ़ा हुआ लौकिकीरण हैं।'' रिग्स के अनुसार ''राजनीतिक विकास मूल्य–चयनों पर आधारित संगठनात्मक निर्णय ले सकने की बढ़ी हुई योग्यता हैं? जाग्वाराइब के अनुसार''राजनीतिक विकास आधुनिकीकरण और राजनीतिक संस्थाकरण का समन्वय है।'' अल्फ्रेड डायमण्ड के अनुसार ''राजनीतिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें नवीन सामाजिक लक्ष्यों के नये प्रकारों को पूरा करने, उन्हें सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने एवं नये प्रकार के संगठनों के निर्माण करने की क्षमता रहती है।'' केनेथ ऑरगेन्स्की के अनुसार '' राजनीतिक विकास राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्र के मानवीय एवं भौतिक स्त्रोतों का उपयोग करते हुए शासन की कार्यकुशलता एवं दक्षता बढ़ाने का नाम हैं। जे. एम. मेकेन्जी के अनुसार ''राजनीतिक विकास उच्च स्तरीय अनुकूलन को प्राप्त करने की क्षमता हैं।'' लूसियन पाई के अनुसार ''राजनीतिक विकास अन्ततः राजनीतिक संस्कृति, प्राधिकृत संरचनाओं और राजनीतिक प्रक्रियाओं के परस्पर सम्बन्धों के बीच घूमता रहता हैं।''

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के विकास की दशा एवं दिशा क्या कर रही हैं ? इस प्रश्न पर विचार करने हेतु राजनीतिक विकास की अध्ययन पद्धति राजनीतिक विकास उपन्यास के आधार पर विचार करें तो संक्षेप में लुसियन पाई पॉलिटिकल कल्चर एण्ड पॉलिटिकल डेवलपमेंट का विचार था कि किसी भी विकासशील विभेदीकरण व्यवस्था के अध्ययन के लिए समानता, क्षमता तथा विभेदीकरण की खोज की जानी चाहिये। लुसियन पाई के अनुसार राजनीतिक विकास के चिन्ह तीन स्तरों पर देखे जा सकते हैं। जिसका तात्पर्य है –

समानता

राजनीतिक सक्रियता के सभी स्तरों पर नागरिकों को अवसर की समानता मिले। जनसाधारण राज्य के कार्यो में अधिक सक्रियता से भाग लेता है अर्थात् समानता के सिद्धांत के प्रति जनता अधिक संवेदनशील हो जाती हैं और ऐसे कानूनों का पालन करने के लिए जो सभी पर समान रूप से लागू होते हैं तत्पर रहती हैं।

क्षमता

राजनीतिक व्यवस्था में ऐसी क्षमता हो तो मांगों का समुचित समाधान करें तथा विवादों का तर्कसंगत हल करें। सार्वजनिक कार्यों का संचालन करने वैचारिक मतभेदों पर नियंत्रण रखने, सार्वजनिक मांगो के साथ निपटने की राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता अर्थात् प्रशासनिक व राजनीतिक व्यवस्था की उपलब्धियाँ एवं क्षमता का स्तर।

विभेदीकरण

राजनीतिक संस्थाएं अलग–अलग कार्यों के लिए अलग–अलग हों तथा उनके प्रकार्यों में सुनिश्चिता तथा समन्वय हों। राजनीतिक व्यवस्था की सहभागी संस्थाओं में सरंचनात्मक विभेदीकरण, कार्यात्मक विशिष्टता तथा एकीकरण की मात्रा बढ़ती जानी चाहिए।

आमण्ड तथा पावेल ने अपनी पुस्तक ''कम्परेटिव पॉलिटिक्स एण्ड डेवलपमेंट एप्रोच'' राजनीतिक विकास के तीन स्तरों को कुछ भिन्न रूप में बताया हैं।

1. **भूमिका का विभिन्नीकरण**–लुसियन पाई ने राजनीतिक विकास हेतु संरचनात्मक विभेदीकरण की बात की थी कि जबकि आमण्ड तथा पावेल ने इससे आगे बढकर भूमिका विभेदीकरण की बात की।
2. **उपव्यवस्था की स्वायत्तता**–यह शक्ति के विकेन्द्रीकरण द्वारा ही संभव है निर्णय निर्माण का कार्य कई स्तरों पर उपव्यवस्थाओं द्वारा किया जाता है जिससे केन्द्र का कार्यभार हल्का हो जाता है यह राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता से जुड़ा हैं।
3. **लौकिकीकरण**–यह पाई द्वारा प्रतिपादित समानता की धारणा का व्यापक स्तर हैं इसका सम्बन्ध संस्कृति से है अर्थात् परम्परागतता से हट कर धर्म निरपेक्ष समाज बने।

उपर्युक्त में से किसी भी आधार (लुसियन पाई, आमण्ड, पावेल, सी.एच जोड़ द्वारा प्रस्तुत मानदण्ड) पर अपनी राजनीतिक व्यवस्था के विकास का विश्लेषण करें तो हमारे देश राजनीतिक सत्ता की क्षमता पर निश्चित रूप से प्रश्नचिन्ह लगता है। हमारी शासन सत्ता तो समुचित नीतियों के निर्माण की क्षमता प्रदर्शित करता हैं और न ही क्रियान्वित की। यदि उचित निर्णय किये भी गये तो क्रियान्वित शिथिल बनी रही हैं यही कारण है संविधान में 100 से ज्यादा संशोधन के बावजूद आम जनता शासन व्यवस्था से संतुष्ट नहीं हैं। सामाजिक आर्थिक न्याय की समस्या समाधान हेतु अपेक्षित गति व स्तर से प्रयास नहीं हुए आम आदमी मुख्य जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा, मकान का समाधान नहीं हो सका। सांस लेने के लिए स्वच्छ वायु और पीने के लिए स्वच्छ जल तक सरकार उपलब्ध कराने में असफल रही है, राजनीति में नैतिक मूल्यों का क्षरण हुआ है, राजनीति व अपराध में गठजोड़ हुआ है। भ्रष्टाचार, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, आंतकवाद, क्षेत्रवाद एवं भाषावाद की समस्याओं के समाधान में राजनीतिक सत्ता अपने आपको असहाय महसूस कर रही है।

हंटिंगटन[4] ने राजनीतिक विकास की प्रक्रिया को एकमार्गीय नहीं माना एवं राजनीतिक विकास की परिकल्पना में पतन की अवधारणा को भी जोड़ा। हंटिंगटन ने इस बात पर बल दिया कि त्वरित गति से होने वाला आधुनिकीकरण राजनीतिक विकास के स्थान पर राजनीतिक पतन को जन्म देता है। राजनीतिक विकास का मापदण्ड यह है कि वह मनुष्यों पर निर्भर न रहे अपितु राजनीतिक प्रक्रिया का संस्थाकरण हों। राजनीतिक प्रक्रिया के संस्थाकरण के अभाव में राजनीतिक पतन होता हैं। हंटिगटन के दुष्टिकोण से विचार करें तो भी हमारी राजव्यवस्था का विकास पतन की दिशा में ही

हुआ है। उपभोक्तावादी संस्कृति के वैश्वीकरण का भारत पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। कम समय में लोग अधिक से अधिक पाना चाहते है। आधुनिकीकरण की आँधी दौड़ के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण समाज में ही नैतिक मूल्यों का हरण हुआ, जिसका प्रभाव राजनीति पर भी पड़ना स्वाभाविक था। हमारी राजव्यवस्था में नेतृत्व का अत्यधिक महत्व रहा हैं। राजनीतिक प्रक्रियाओं को सुदृढ़ता प्रदान करने के स्थान पर हमने राजनीतिक नेतृत्व को अधिक महत्वता दी अतः हमारी राजव्यवस्था में हूँ आफ्टर नेहरू ? जैसे प्रश्न उठे थें। आज भी पं. नेहरू व श्रीमती इंदिरा गांधी जैसे करिश्मावादी नेतृत्व का आभाव अनेक लोगों को छलता है, भारतीय राजनीति व्यवस्था के समक्ष चुनौतियों के समाधान हेतु सुझाये जाने वाले विकल्पों में विभिन्न संगोष्ठी व सेमिनार में भी बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा भी अपेक्षा की जाती है कि एक करिश्मावादी नेतृत्व उभरे जो व्यवस्था को सुदृढ़ता से आगे बढ़ा कर ले जायें अर्थात नेतृत्व के संकट पर चिंता जताई जाती है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. राजनीति व्यवस्था एवं राजनीतिक विकास का विचारकों द्वारा दिये गये अभिप्राय एवं परिभाषा का अवबोध।
2. राजनीतिक विकास से सम्बन्धित विचारकों द्वारा दिये गये बिन्दुओं की व्याख्या करना।
3. राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनीतिक विकास की प्रक्रिया का भारतीय राजनीति के सन्दर्भ में अध्ययन करना।
4. भारतीय राजनीतिक विकास के तराजू के तहत राजनीतिक व्यवस्था में आने वाली संतुलन एवं असंतलन के तहत बाधाओं की व्याख्या करना।
5. सरकार के अंगों में विशेष रूप से न्यायपालिका की महत्ती भूमिका एवं सक्रियता का उल्लेख करना।
6. मेहनतकश किसान मजदुर की आत्महत्या के कारणों एवं निर्धारित जनप्रतिनिधियों की सम्पत्ति में बेहताशावृद्धि के तथ्यों की समीक्षा करना।
7. भारतीय राजनीति में आने वाली समस्याओं का समाधान करने का प्रयास करना।
8. 21 वीं शताब्दी में भारतीय राजनीतिक विकास को सुदृढ़ करने, सुझाव एवं समाधान को खोजना।

साहित्यावलोकन

एस. पी. वर्मा ने अपनी पुस्तक आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त में विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के परस्पर आदान–प्रदान की प्रक्रिया को समझाया तथा राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक व्यवस्था को समझाया।[1] डेविड ईस्टन ने अपनी पुस्तक ए सिस्टम एनालिसिस ऑफ पॉलिटिकल लाईफ, न्यूयॉर्क 1965 में राजनीतिक व्यवस्था को समझाया है। लूसियन पाई ने अपनी पुस्तक आसपेक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल डेवलपमेंट में राजनीतिक विकास के तीन स्तरों की व्याख्या की है। सैमुअल पी. हंटिंगटन, ने अपनी पुस्तक पॉलिटिकल आर्डर इन चेंजिंग सोसाइटीज 1968 व पॉलिटिकल डेवलपमेंट व डिके 1968 में राजनीतिक विकास एवं राजनीतिक पतन का उल्लेख किया है। गोविन्द भट्टाचार्य एवं देबासीस भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक जीएसटी एण्ड़ ईट्स आफ्टर मेथस (सेज पब्लिशिंग 2018 कुल पृष्ठ 244 मूल्य 450/–) में बताया है कि क्या उपभोक्ता वास्तव में राजा है तथा बताने का प्रयास किया कि अप्रत्यक्ष कर में वृद्वि हुई तथा इससे हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ा और भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार होगा बताया। रामगोपाल अग्रवाल ने अपनी पुस्तक डेमोनीटिशन,ए मीन टू एन एण्ड? (सेज पब्लिशिंग 2017 कुल पृष्ठ 224 मूल्य 425/–) में 8 नवम्बर 2016 को 500 व 1000 के नोट को प्रचलन से बहार कर दिया जिसके सन्दर्भ में इसमें यह बताया है कि अब क्या होगा? व आगे क्या होगा ? अर्थात् नोटबंदी के सन्दर्भ में बताया।

शोध पद्धति

इस शोध पत्र में शोधार्थी ने विशेष रूप से सहभागिता, अर्द्ध सहभागिता के रूप में आम नागरिक होने के नाते अनुभव के आधार पर व प्राप्त स्त्रोतों, लेखों एवं पुस्तकों (द्वितीय स्त्रोतों) के माध्यम से केवल एक देश विशेष (भारत) के सन्दर्भ व्यक्तिवृत्त अध्ययन किया गया है तथा निर्देशन पद्धति के तहत प्राप्त स्त्रोतों के आधार एवं विकास का तराजू एवं व्यवस्था का संतुलन एवं असंतुलन के आधार पर सुझाव देने का एक संक्षिप्त सा प्रयास किया गया है।

राजनीतिक व्यवस्था का अर्थ एवं परिभाषा

ईस्टन के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था '' किसी भी समाज में अंतः क्रियाओं की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके माध्यम से बाध्यकारी अथवा सतापूर्ण निर्णय लिए जाते है'' इस प्रकार सतापूर्ण निर्णय लेने का यह लक्षण राजनीतिक व्यवस्था को समाज के भीतर और बाहर की उन व्यवस्थाओं से जो राजनीतिक व्यवस्था के पर्यावरण का निर्माण करती है भिन्न करती है। राजनीतिक व्यवस्था का तात्पर्य मात्र शक्ति हिंसा अथवा सत्ता से नहीं अपितु सामाजिक जीवन के अन्य तत्वों से भी उसका सम्बन्ध होता है। राजनीतिक व्यवस्था निरन्तर पर्यावरण से प्रभावित होती है तथा राजनीतिक व्यवस्था स्वयं पर्यावरण को प्रभावित करती है। रॉबर्ट डाहल के मतानुसार, राजनीतिक व्यवस्था मानव सम्बन्धों का वह चिरस्थायी ढाँचा है, जिसके अन्तर्गत शक्ति, नियम और सत्ता महत्वपूर्ण मात्रा में अन्तग्रस्त हो। इस प्रकार आधुनिक राजनीति वैज्ञानिक राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को अधिक गत्यात्मक, आनुभाविक अध्ययन पद्धति के अनुकूल तथा यथार्थवादी मानते है। डेविड ईस्टन ने अपनी रचना दि पॉलिटिकल सिस्टम एन इन्कवायरी इन टू दि स्टेट ऑफ पॉलिटिकल सांइस (1953) में वैज्ञानिक विश्लेषण किया है। ऑरन यंग ने ईस्टन के निवेश–निर्गत विश्लेषण को उन व्यवस्थात्मक दृष्टिकोणों में, जिनका अभी तक किसी राजनीतिक शास्त्री ने विशेष कर राजनीतिक विश्लेषण के लिए निर्माण किया हो सर्वश्रेष्ठ माना है।

ईस्टन का राजनीतिक व्यवस्था का (निवेश–निर्गत) मॉडल[5]

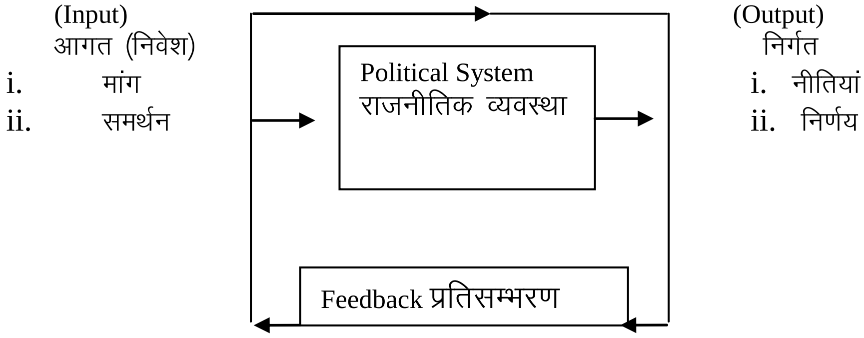

पर्यावरण

भारत एक विकासशील देश है जिसमें राजनीतिक व्यवस्था के जैसा ही रूप हमें देखने को मिलता है। डेविड ईस्टन के बताये हुए राजनीतिक व्यवस्था के जैसा ही भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में मांग व समर्थन निवेश के तहत आती है और इसके तहत ही नीतियां बनती और निर्णय होता है और दूसरी समस्या उत्पन्न होने पर पुनः प्रतिसम्भरण के तहत फिर से मांग उठती है और समर्थन मिलता है यह प्रक्रिया सतत् रूप से अनवरत चलती रहती हैं। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के विकास के इस प्रकार के विश्लेषण पर आपत्ति व्यक्त की जा सकती हैं और एम. बुड जैसे शब्दों का प्रयोग करते हुए कहा जा सकता है कि भारत की गरीब व पिछड़ी जनता है यहां की समस्यायें भिन्न प्रकार की है अतः राजनीतिक विकास का विश्लेषण करने हेतु शिकागो व हारवर्ड विश्वविद्यालयों के चश्में को पहनकर भारतीय राजनीतिक विकास की दिशा मूल्यांकन करना अनुचित हैं तो भी तमाम असहमतियों व आलोचनाओं के बावजूद क्या कोई इस तथ्य से इंकार कर सकता है कि भारतीय शासन व्यवस्था की उपयोगिता व सार्थकता पर नहीं भारतीय संविधान में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता पर भी राष्ट्रीय बहस प्रारंभ हो चुकी है ? क्या इस बहस का मूल कारण यह नहीं है कि हमारी शासन सत्ता नागरिकों को मूलभूत सुविधायें प्रदान करने में असफल एवं अक्षम रही हैं चुनावों में घोषणा–पत्र जारी करना एक औपचारिक रस्म रह गयी है। चुनावों के बाद घोषणा–पत्र में किये गये वायदों को शासक दल भुला देता है और जनता के समक्ष अगले चुनावों में सत्ता परिवर्तन का इंतजार करने के अलावा कोई विकल्प शेष नहीं रहता। यद्यपि भारतीय समाज में राजनीतिक सत्ता शक्ति का सबसे प्रभावशाली रूप है। अतः सभी वर्गों के लोग राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करते है। राजनीतिक नेता का देश में जो सम्मान है वह विज्ञान, साहित्य, कला व संस्कृति के नेता का नहीं। राजनीतिक नेता की मृत्यु पर पूरे देश में शोक छा जाता हैं। कहीं पहुंचने पर स्वागत किया जाता हैं, जूलूस निकाले जाते हैं, तथा नेताजी की जय–जयकार की जाती हैं। संभवतः संसार के किसी भी प्रगतिशील देश में नेताओं को इतना महत्व नहीं दिया जाता इसके बावजूद राजनीतिक नेता लोकतांत्रिक मूल्यों एवं सुशासन की स्थापना में असमर्थ रहें हैं। यदि हमारी लोकतंत्रीय व्यवस्था का विश्लेषण करने हेतु संस्थात्मक दृष्टिकोण के अनुरूप लोकतंत्रीय व्यवस्था के तत्वों का विश्लेषण करें तो हमारी व्यवस्था में निम्न चित्रानुसार लोकतांत्रिक तत्व स्पष्ट परिलक्षित होने चाहिए। जो कि डेविड एप्टर ने प्रस्तुत किया है।

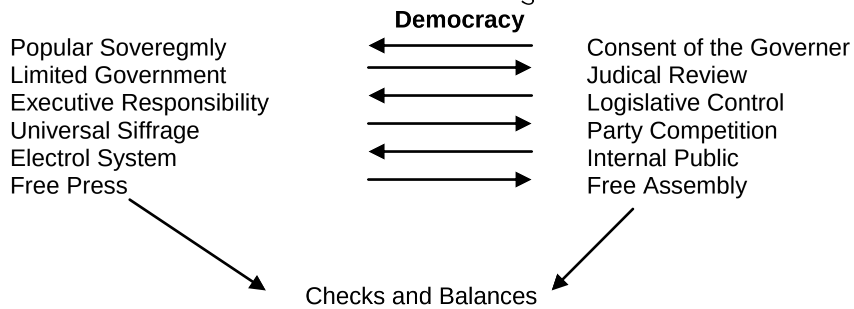

इन तत्त्वों के विश्लेषण में स्पष्ट होता है कि लोकतंत्र के कार्य करने हेतु लोकप्रिय सम्प्रभुता आवश्यक हैं। सरकार की कार्य करने की शक्ति पर व्यवस्थापिका के नियंत्रण की आवश्यकता है। शक्ति के नियमन का उत्तरदायित्व कों प्रभावशाली बनाने हेतु वयस्क मताधिकार आवश्यक है, जो कि संगठित राजनीतिक दलो की शांतिपूर्ण प्रतियोगिता से संभव बनता है, जो कि चुनाव व्यवस्था के संदर्भ में यह माना जाता है कि जनता को सही जानकारी प्राप्त हो, इस हेतु स्वतंत्र प्रेस की गारंटी आवश्यक है तथा विरोधियों को भी विचारों के सम्प्रेषण का अधिकार प्राप्त हों। सरल शब्दों में हम कह सकते है कि लोकतंत्र में राजनीतिक सत्ता से अपेक्षा की जाती है कि शक्ति का प्रयोग समता एवं न्याय के मापदण्ड के अनुरूप होना चाहिये, इस हेतु आवश्यक है कि :–

1. नागरिकों के मूलभूत अधिकारों के उपभोग को सुनिश्चित करें।

2. शासन सत्ता जनता के प्रति उत्तरदायी हो।
3. स्वच्छ, पारदर्शी तथा संवेदनशील शासन एवं प्रशासन हो।

इन तीनों अपेक्षाओं को हमारी शासन सत्ता किस सीमा तक पूर्ण कर रही है ? यह निम्न तथ्यों से स्पष्ट होता हैः–

नागरिकों के मूलभूत अधिकारों की सुनिश्चितता

जीवन व व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार

व्यक्ति के जीने के मूलभूत अधिकार पर कुठाराघात करता हैं। पंजाब में 1983 से चले आतंकवाद के सिलसिले पर यद्यपि अब काबू पा लिया गया है किन्तु जम्मू–कश्मीर राज्य में 1987 से ही आतंकवाद की स्थिति बनी हुई हैं। प्रारंभ में आतंकवाद कश्मीर घाटी तक सीमित था किन्तु 1990 में जम्मू क्षेत्र भी इसकी चपेट में आ चुका हैं। हिंसा व आतंक के कारण कश्मीर के नागरिकों एवं कश्मीर जाने वाले लोगों को जीवन पर हर समय खतरे के बादल मंडराते रहते हैं। लाखों कश्मीरी हिन्दु वहां से विस्थापित होकर दिल्ली के शरणार्थी केम्पों में बेबस, बदहाल जीवन जीने को मजबुर हैं। पश्चिमी बंगाल व बिहारी नक्सलवादियों के आतंकवाद से पीड़ित है, तथा असम में अल्फा के आतंक का साया हैं। आतंकवाद का विषाणु एक दिन में उत्पन्न नही होता निश्चय ही इसकी जड़ में प्रदूषित एवं अक्षम राजनीतिक व्यवस्था एवं शासन सत्ता हैं। दुसरी ओर कानूनी पेचीदगियों से जुझते हजारों विचाराधीन कैदी भारतीय जेलों में बंद पड़े है, केवल संदेह के आधार पर जेल में सलाखों के बीच रखना जीवन के अधिकार का उल्लघंन हैं। पिछले दिनों गोरक्षा के नाम पर दलितों और मुसलमानों पर ही हिंसक हमले किए गए और इन हमलों के पीछे गोरक्षा का उद्देश्य कम, इन तबकों के प्रति घृणा अधिक काम कर रही थी। अधिक संभावना इसी बात की है यदि सक्षम अधिकारी स्वर्ण हुआ तो वह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दी गई नई व्यवस्था के तहत गिरफ्तारी के लिए अनुमति हीं नहीं देगा। सात दिन की जांच के बाद कितने मामले दर्ज किए जाएंगे, यह कहना भी बहुत कठिन है। कानून और न्याय देशकाल निरपेक्ष नहीं हो सकते। पिछले कई वर्षों से सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरण की सुरक्षा के लिए कई बार स्वतः प्रसंज्ञान लिया। इसके बावजूद विश्व सांस्कृतिक महोत्सव के चलते यमूना डूब क्षेत्र को नुकसान पहुंचा और एक बार फिर न्याय व्यवस्था का वर्ग चरित्र उजागर हुआ। सेफ्टी टैंक की सफाई करते हुए मजदूरों की मौत हो गई ये मजदूर अक्सर दलित ही होते हैं। क्या देश की सबसे शक्तिशाली अदालत केन्द्र और राज्य सरकारों को कोई निर्देश जारी करेगी ताकि इन सफाई कर्मचारियों की सुरक्षा का कोई प्रबंध हो सके ? क्या वह देश के नागरिकों को आश्वास्ति देगी कि दुर्बलों को भी इंसाफ दिलाने के लिए प्रतिबद्ध है, केवल सबलों को ही नहीं ?[6] 2015 का आंकड़ा है कि जेलों में बंद कैदियों की कुल संख्या का 67.3 प्रतिशत विचारधीन कैदियों का था। इनमें से भी 53 प्रतिशत से अधिक दलित, आदिवासी और मुसलमान थे। विचारधीन कैदी वें है जिनके खिलाफ मुकदमें या तो चलने शुरू ही नहीं हुए है या फिर चले जा रहे है। देखा गया है कि दशकों तक विचाराधीन कैदी जेल में बंद रहते हैं। पिछले दिसम्बर में ही दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस संबंध में चिंता व्यक्त की थी। थोड़े–थोड़े अन्तराल के बाद ऐसी खबरें आती रहती है जब आतंकवाद के आरोप में गिरफ्तार व्यक्ति पंद्रह बीस साल जेल में गुजारने के बाद बाइज्जत रिहा हो रहा हैं, यानि उन पर लगाए गए आरोप झूठे सिद्ध होते हैं। क्या सर्वोच्च न्यायालय को सभी के लिए ऐसी व्यवस्था नहीं करनी चाहिए कि केवल आरोप लगने के कारण ही किसी को जेल में न डाला जा सके? क्या उसका यह दायित्व नहीं है कि वह सभी प्रकार के कानूनों के दुरूपयोग को रोके?

सामाजिक न्याय

भारतीय संविधान में आरक्षण की व्यवस्था केवल अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए इस उद्देश्य से की गई थी, किन्तु धीरे–धीरे आरक्षण का प्रश्न राजनीति से जुड़ गया और इन्हें सत्तारूढ़ पार्टी ने अपना स्थायी वोट–बैंक मान लिया। बाद में अन्य पिछड़े वर्गों को भी मण्डल आयोग की सिफारिशों के तहत आरक्षण प्रदान कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न राज्यों में सत्ता में बैठे लोग राजनीतिक लाभ उठाने के लिए मनमाने ढंग से आरक्षण के कानूनी प्रावधान लागू करने लगे। आरक्षण के नाम पर देश को विभिन्न जातियों व वर्गों में बांटने का कार्य किया गया हैं। धर्मनिरपेक्षता संविधान व राज्य के बावजूद धर्म निरपेक्ष समाज नही बन पाया। सभी राष्ट्रीय राजनीतिक दलों की धर्मनिरपेक्षता कागजों में सीमित हैं, चुनावों के दौरान धार्मिक आधार पर वोटों की सौदेबाजी की जाती हैं। कुछ राजनीतिक दल मुस्लिम समुदाय को अकारण दबाने एवं तुष्टिकारण की राजनीति का प्रचार कर वोट बटोरते हैं। ऑक्सफेम रिर्पोट द्वारा जारी की गई भारतीय असमानता रिपोर्ट 2018 के अनुसार भारत में वर्ष 1991 के बाद शुरू हुए उदारीकरण के बाद समाज में आर्थिक असमानता और अधिक भयावह होती जा रही है। वर्ष 2017 में भारत में अरबपतियों की कुल सम्पत्ति देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) की पन्द्रह फीसदी के बराबर हो गई। जबकि पांच वर्ष पहले यह दस फीसदी थी। भारत विश्व के सबसे अधिक असमानता वाले देशों में से एक है। यह स्थिति सारे पैमानों– आय, खपत और सम्पत्ति के मामले में है। देशभर में जितनी सम्पत्ति बढ़ी उसका 73 फीसदी हिस्सा एक फीसदी अमीरों के पास पहुंचा है। विश्व के देशों में आर्थिक एवं सामाजिक विकास का तुलनात्मक अध्ययन करने वाले संगठन वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम (डब्ल्यू ई एफ) के द्वारा तैयार किए गए समावेशी विकास सूचकांक 2017 में हमारा देश विश्व में उभरती अर्थव्यवस्थाओं की 103 देशों की सूची में 62 वें स्थान पर है। इस सूचकांक में भारत पिछले साल 60 वीं रैंकिंग से भी नीचे आ गया है। [7]इस बात की क्या गांरटी है कि दलितों और आदिवासियों के उत्पीड़न को रोकने के लिए बने कानून का दुरूपयोग रोकने के लिए सर्वोच्च न्यायालय ने जो व्यवस्था दी है, उसका दुरूपयोग नहीं किया जाएगा ? क्या यह तथ्य सर्वोच्च न्यायालय के संज्ञान में नहीं है कि आजादी के 70 साल बाद भी समाज में दलितों और आदिवासियों के प्रति किस प्रकार

का द्वेष और नफरत है ? आज भी स्वर्ण जातियों के आत्मसम्मान और जाति श्रेष्ठता को ठेस पहुंचती है यदि कोई दलित उनकी बराबरी करने का दुस्साहस करता है वरना एक दलित के घोड़ी पर चढ़ने पर सरेआम उसकी हत्या न की जाती। आज भी बहुत सी जगहों पर दलित स्त्रियां सोने के गहने नहीं पहन सकती।[8]

आर्थिक न्याय

नागरिकों के लिए वयस्क मताधिकार का प्रावधान इस अपेक्षा से संविधान में किया था कि जनता शासक दल पर दबाव डालकर उसे अपने प्रति उत्तरदायी बना सकेगी तथा राजनीतिक लोकतंत्र के द्वारा शांतिपूर्ण तरीके से सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना हो सकेगी। लेकिन आज देश के नागरिकों की प्रत्येक सुबह एक नई परेशानी से जूझने के साथ शुरू होती है। हर बार चुनावों के समय उसमें एक उमंग जागृत होती हैं कि नई सरकार उसकी समस्याओं का समाधान करेंगी। लेकिन वह हर बार ठगा जाता हैं। जमाखोरी व मुनाफाखोरी पर कोई नियंत्रण नहीं हैं। आम जरूरत की चीजो, अनाज, दाल, तेल व सब्जी की कीमते आसमान छू रही हैं जबकि भोग व विलासिता के समान टी.वी. फ्रिज, इलेक्ट्रॉनिक सामान, सौन्दर्य प्रसाधनों से बाजार अटा पड़ा हैं। जिनको बेचने के लिए इनामी योजनायें लाई जा रही है, खरीददार नहीं मिल रहे हैं। प्रबल बहुमत वाली नई सरकारें तथा जनता के इस उत्साह व अपेक्षा से सबक लेकर केन्द्र सरकार कहाँ तक इन समस्याओं का समाधान करती हैं ? वस्तुतः उदार अर्थव्यवस्था में विकास का लाभ ऊपर से शुरू होकर नीचे तक पहुंचेगा। इस प्रचार के बावजूद अर्थव्यवस्था का नियंत्रण मुठ्ठीभर उच्च वर्ग के हाथ में आ गया हैं। निम्न व मध्यवर्ग को नियोजन की प्रक्रिया से पूर्णतः बाहर कर दिया गया हैं। भूमण्डलीकरण/वैश्वीकरण की आड़ में स्वदेशी उद्योग–धन्धों, क्षमता व कौशल की पूर्णतः उपेक्षा की गई है जो कि हमारे स्वावलम्बन का आधार थी। निर्यात बढ़ाकर विदेशी मुद्रा कमाने की धुन ने आवश्यक वस्तुओं का अभाव पैदा कर दिया जिससे आम आदमी का जीवन आर्थिक बोझ से कठिनाई में पड़ गया हैं। भारत के ललित मोदी, विजय माल्या, नीरव मोदी जैसे व्यक्ति देश का पैसा डकार कर विदेश भाग गये। पंजाब राज्य ने गेहूँ, चावल सबसे अधिक राष्ट्रीय अन्य भण्डार में पहुंचाया तथा कपास की खेती में भी अग्रणी रहा है, आज उसी राज्य में मुफ्त बिजली लिये जाने के बावजूद किसान जर्जर आर्थिक दशा में कर्ज के बोझ के कारण आत्महत्या कर रहे हैं। खराब मौसम के अलावा प्रशासनिक लापरवाही भी इसके लिए जिम्मेदार है किसानों व मिल मालिकों का आरोप है कि पूर्व में जो सहयोग मिलता था वह नहीं मिल रहा। खेती से जुड़े अनके उद्योग धन्धे बंद हो चुके है व हजारों लोग बेरोजगार हो गये हैं। केन्द्र से आर्थिक अनुदान मिला किन्तु देर से। देश की लगभग 40% जनता गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रही हैं। करोड़ो व्यक्ति केवल बहुत कम आय पर गुजारा कर रहे हैं। भारत में एफ डी आई का लाना, नोटबन्दी करना, खाद्य सुरक्षा बिल का पास होना, अन्त्योदय योजना का लागू होना एक सफल प्रयास है।

उत्तरदायित्व एवं जवाबदेयता

भारत की संसदीय व्यवस्था में जनता अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से सरकार पर नियंत्रण रखती हैं। संसद वाद–विवाद एवं प्रश्नकाल, स्थगन, प्रस्ताव एवं अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से कार्यपालिका संसद के प्रति उत्तरदायी एवं जवाबदेह बनाये रखने में समर्थ है अतः वह संसदीय लोकतंत्र की संरक्षक एवं सम्वर्धक बन सकती हैं। स्वतंत्रता के प्रारम्भिक वर्षों में वाद–विवाद तथा प्रतिबद्धता के उच्च मापदण्ड स्थापित कर भारतीय संसद ने प्रभावशाली भूमिका निभाई, ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। जब संसद ने कार्यपालिका को गलत निर्णय, वापस लेने पर मजबूर किया। किन्तु 1967 के चौथे आम चुनावों के बाद संसद की शक्तियों, सत्ता व स्वतंत्रता में संतुलन स्थापित करने में असफल रही। संसद की बैठकों की संख्या में भारी कमी आई हैं। आर्थिक मामलों में तो स्वतंत्रता के बाद से ही संसद सरकार पर नियंत्रण रखने में असफल रही हैं। आश्चर्य है कि संसद ने कभी भी इस अध्यादेश राज को रोकने व इस प्रकार उसकी शक्तियों में कार्यपालिका के अनाधिकृत प्रवेश को रोकने हेतु कोई शक्तिशाली विरोध दर्ज नहीं कराया। संसद के पास नीति सम्बन्धी गंभीर विषयों पर विचार के लिए समय का अभाव रहता है, तुच्छ बातों पर अधिक समय बहस होती हैं। वस्तुतः समस्याओं के समाधान के संदर्भ में संसदीय वाद–विवाद निरर्थक होते जा रहें हैं। लोकतंत्र की प्रतीत संस्था संसद की गरिमा को इसके सदस्यों के आचरण से गहरा आघात पहुंचा हैं। सिद्धांत रहित अवसरवादी, बेमेल गठबन्धन व साझा सरकारों के असफल प्रयोग संसदीय व्यवस्था के प्रति अनास्था एवं संदेह को तीव्र कर रहे हैं। स्वच्छ, संवेदनशील, पारदर्शी शासन एवं प्रशासन का निम्न तथ्यों के आधार पर मूल्यांकन किया जा सकता हैं :–

भ्रष्टाचार

पंचवर्षीय योजनाओं के प्रलेखों में बताया गया है कि नियोजन व उसके क्रियान्वयन में बड़ा अन्तर हैं। सरकार नीतियों की व्याख्या व क्रियान्विति प्रशासन द्वारा की जाती हैं। अतः हमारी सरकारी नीतियों को ठोस स्वरूप देने हेतु ईमानदार एवं सुदृढ़ प्रशासन भी आवश्यक हैं किन्तु हमारे प्रशासक एक आर्थिक भ्रान्ति के शिकार है उनका लक्ष्य उत्पादन के लक्ष्यों के बजाय खर्च के लक्ष्यों पर केन्द्रित रहता हैं किन्तु जनता की उत्पदन एवं ठोस लक्ष्यों से संतोष हो सकता हैं, उसे बजट में बढ़े हुए खर्च के आंकड़ों से संतोष नहीं हो सकता। वस्तुतः राजनीतिज्ञों व प्रशासकों के मध्य इशारा संस्कृतियो का विकास हो रहा हैं। विभिन्न राज्यों के पूर्व अनेक मंत्री एवं मुख्यमंत्री स्तर के नेता न्याय कि सक्रियता के माध्यम से विभिन्न घोटालों में लिप्त पाये गये हैं। बोहरा कमेटी कर रिपोर्ट में सरकारी तौर पर व्यापारियों, नौकरशाहों राजनीतिज्ञों व अपराधियों में सांठ–गांठ को स्वीकृत किया गया था। न्यायिक सक्रियता के द्वारा एक के बाद एक जो आर्थिक घोटाले प्रकाश में आये हें तथा अनेक सरकारी अधिकारियों व व्यापारियों के यहां सी.बी.आई. के छापों में करोड़ो रूपया निकला है, वे इस बात के प्रमाण हैं कि पिछले 10–15 वर्षो से भ्रष्टाचार कैंसर की भांति तेजी से

फैलकर सम्पूर्ण प्रशासन राजनीति व अर्थतंत्र को आच्छादित कर चुका है। 73 वें व 74 वें संविधान संशोधन के बाद गठित पंचायते व नगरपालिकायें भी भ्रष्टाचार का केन्द्र बन गई हैं। ऐसा आभास होता है कि शायद भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार बन गया हैं तथा सरकार इसे समाप्त करने में अपने आप को असमर्थ महसूस कर रही हैं। आजादी की स्वर्णजंयती के अवसर पर लाल किले से राष्ट्र को अपने सम्बोधन के दौरान पूर्व प्रधानमंत्री गुजराल ने कहा था ''यह वक्त है भ्रष्टाचार को खत्म करने का या खुद समाप्त हो जाने का भ्रष्टाचार इस देश की जड़ को ही खाये जा रहा हैं। 8 नवम्बर 2016 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने नोटबन्दी कर के भ्रष्टाचार मिटाने का प्रयास किया गया। नोटबंदी और जीएसटी को सरकार साहसिक कदम के रूप में पेश करती है लेकिन इनकी ही वजह से उसके खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में मामले तेजी से बढ़ रहे है। विधि मंत्रालय द्वारा जारी आंकड़ों के मुताबिक सरकार के खिलाफ मामलों में 2017 में एकाएक वृद्धि हुई है जो इस वर्ष भी जारी है। 2017 में सरकार के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में 4223 मामले थे जबकि 2016 में यह आंकड़ा 3497 था। आंकड़ों के मुताबिक बढ़ते मामलों की मुख्य वजह नोटबंदी और जीएसटी है।

किस वर्ष कितने मामले (22 फरवरी 2018 तक के मामले)

1. 2012—4149
2. 2013—4772
3. 2014—4748
4. 2015—3909
5. 2016—3497
6. 2017—4223
7. 2018—859

दिलचस्प बात यह है कि सरकार के खिलाफ मामले बढ रहे है लेकिन सरकार का पक्ष रखने वाले विधिक अधिकारियों की संख्या में कमी आती जा रही है।[9] बीते पांच साल में दूसरी बार चुने गये 25 सांसदों और 257 विधायकों की सम्पत्ति पांच गुना बढ़ गयी थी। सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका के अनुसार बांसवाड़ा गांव के सांसद कमलेश पासवान की सम्पत्ति 5649 फीसदी का इजाफा हो गया। केरल के मुस्लिम लीग सांसद रही मोहम्मद बशीर की सम्पत्ति 2000 गुना बढ़ गई है। 26 सांसदों में से 15 सांसदों की सम्पत्ति में बीते पांच साल में पांच गुना का इजाफा हुआ है। ये सांसद भाजपा से है। यह याचिका गैर सरकारी संगठन लोक प्रहरी ने दायर की है। कांग्रेस की पूर्व अध्यक्ष सोनिया गांधी की सम्पत्ति 573 फीसदी मावेली कारा से सांसद कोडिकुलील सुरेश की सम्पत्ति 702 फीसदी, सुल्तानपुर के सांसद वरूण गांधी की सम्पत्ति में 625 फीसदी, कर्नाटक के पूर्व सीएम सदानंद गौउ की सम्पत्ति 588 फीसदी, चेंगानूर से विधायक विष्णुनाथ की सम्पत्ति 44325 फीसदी, शेरगढ़ विधायक बाबूसिंह की सम्पत्ति 39367 फीसदी बढ़ी।'' [10]

राजनीति का अपराधीकरण

राजनीति का अपराधिकरण एवं अपराधों का राजनीतिकरण हो गया है यह एक स्वीकृत तथ्य हैं। बोहरा समिति की रिर्पोट जो 1995 में सरकार को सौंपी गई थी, में राजनीतिज्ञों व अपराधियों के गठजोड़ के प्रमाण रिपोर्ट के इस अंश में देखे जा सकते हैं। ''माफिया द्वारा समानान्तर सरकार चलाई जा रही है, जिससे राज्य का ढांचा निरर्थक हो गया है। गुण्डो के गिरोह बेतहाशा बढे है, सशस्त्र निजी सेनाओं ड्रग माफिया, स्मगलर गुटों व आर्थिक अपराधों में लिप्त, असामाजिक तत्वों का सरकारी अधिकारियों, स्थानीय स्तरों पर कार्यरत स्थानीय कर्मचारियों,राजनेताओं मिडिया के लोगों एवं गैर राजकीय उपक्रमों में कार्यरत महत्वपूर्ण व्यक्तियों के साथ सम्पर्क हो गया है। इन्होने सफलतापूर्वक सभी स्तरों पर सरकारी तंत्र को भ्रष्ट कर दिया हैं और इनके विरूद्ध कार्यवाही करना बड़ा मुश्किल हो गया हैं। इससे पूर्व 1989 में श्री कमलापति त्रिपाठी ने कहा था ''भारतीय राजनीति में ऐसे नेता उभर रहे हैं जो पहले गुण्डों के माफिया थे ठेकेदार थे और अत्यधिक धनी थे। ये अपराधी लोग शीध्र ही संसद पर कब्जा कर लेंगे और आज के राजनीतिज्ञों को निकाल बाहर करेंगें तब वी. पी. सिंह, अटलबिहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर,जसवंत सिंह मधु दण्डवते एवं नवूदरी वाद जैसे नेता नहीं होंगे। चुनावों में धनबल एवं भुजबल की बढ़ती भूमिका चिन्ता का विषय है, वास्तव में यहीं अपराध, भ्रष्टाचार व आतंक की खाद हैं। स्वंय पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी ने कहा है कि 'राजनीति व अपराध में सांठ—गांठ को तोड़ना होगा। व्हीसल ब्लायर्स के तहत राजनीति में अपराधीकरण का पता लगाया जाता है तथा आरटीआई के तहत भी सूचना प्राप्त कर अपराधी की सूची प्राप्त हो जाती है।

नैतिक मूल्यों का पतन

राजनीति व प्रशासन दोनों में नैतिक मूल्यों का ह्यस हुआ है यही कारण है कि वे जनता के प्रति संवेदनशील नहीं हैं। राजनीतिका व्यवसायीकरण होने के कारण लोक कल्याण व लोकहित की भावना विलुप्त हो गई हैं। शीर्ष राजनीतिक स्थान प्राप्त करने की नेताओं में रस्साकशी तथा राजनीतिक शिखर से एक दूसरे को धक्का देकर नीचे गिराने की साजिशों ने बुद्धिजीवी वर्ग को झकझोर दिया हैं। इन घटनाओं से राजनीतिक व्यवस्था के प्रति देश में अनास्था एक अविश्वसनीयता की भावना बढ़ी हैं। जज लोया का केस अपने आप में व्यवस्था का भंग होना प्रतीत होता है अर्थात् आम आदमी की पहुंच ही कहां तक रहेगी। गंगापुर थाना क्षेत्र (भीलवाड़ा) के पोटला में गुरूवार शाम दिनांक (05.04.2018) को एक हेयर कटिंग दुकान संचालक पर दलित युवक को आधी कटिंग के बाद घर भेजने का मामला सामने आया। इस पर संचालक के विरूद्व एससी—एसटी एक्ट के तहत मुकदमा दर्ज कर लिया गया।[11]

विचारधारा का अभाव

अब किसी भी राजनीतिक दल को स्वीकार्य प्रतीत नहीं होता। जब कोई सदस्य किसी राजनीतिक दल की सदस्यता से त्यागपत्र होता है तो उस दल में आने को ''घरलोटना'' कह दिया जाता हैं। अतः वर्तमान समय के सभी राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों में विघटन का दौर चल रहा हैं। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय राजनीतिक दलों एवं निर्दलियों का महत्व केन्द्र में सत्ता समीकरण में बढ़ता

जा रहा हैं। जो केन्द्र में अस्थिरता के महत्वपूर्ण कारक हैं तथा निकट भविष्य में इनका महत्व कम होगा ऐसी संभावना दिखाई नहीं देती। आजादी के 70 वर्ष बाद भी नौकरशाही अपने को जनता का सेवक नहीं स्वामी मानती हैं पुलिस वन, नहर व मालगुजारी विभाग रिश्वत को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं, गांवों में थानेदार व पटवारी का भय अब भी व्याप्त हैं। राजनीतिज्ञों व प्रशासनिक अधिकारियों में नैतिक मूल्यों की कमी का यही परिणाम है कि आज जातिवाद, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद, भाषावाद तथा भाई भतीजा वाद का जहर राजनीति की धमनियों में रक्त बनकर संचारित हो रहा हैं। बिहार में मुख्यमंत्री नीतिश कुमार ने बीजेपी वर्सेस महागठबन्धन के तहत चुनाव लड़ा जिसमें महागठबन्धन से बहुमत हासिल किया। परन्तु बाद में नीतिश कुमार ने बीजेपी का दामन थाम लिया इससे वहां की (बिहार) आम जनता अपने आपको ठगा हुआ महसूस कर रही हैं। संसद के बजट फरवरी–मार्च 2018 सत्र का दूसरा भाग बिना कामकाज के यूं ही बीत गया। ओबीसी और तीन तलाक जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर बहस हो ही नहीं पाई। पंजाब नेशनल बैंक घोटाला, आंध्रप्रदेश को विशेष राज्य का दर्जा देने तथा कावेरी प्रबंधन बोर्ड के गठन की मांग को लेकर ऐसा हंगामा किया कि सदन चल ही नहीं सका।

सुझाव एवं समाधान

1. चुनावों के बाद के गठबन्धन को मान्यता न दी जाये। दल बदल विधेयक में और अधिक संशोधन की आवश्यकता हैं। समर्थन देने वाली पार्टियां लिखित में अवधि निर्धारित करें कि वें कितने समय के लिए सरकार को समर्थन दे रहीं हैं यदि बीच में समर्थन वापस लेती है तो उस पार्टी की मान्यता खत्म कर देनी चाहिए। चुनावों में जारी घोषणा पत्र को लागू नही करने वाली सरकार पर धोखाधड़ी का मुकदमा दर्ज करने की व्यवस्था की जायें और उन्हें आगे चुनावों में लड़ने की अनुमति नहीं दी जाये तथा न्यायालय द्वारा इसकी जाँच कर आगे की दिशा तय की जावे। धार्मिक भावनाओं के साथ खिलवाड़ करने वालें नेताओं की योग्यता चुनाव लड़ने के लिए खत्म कर देनी चाहियें। इसके तहत सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्णय लेकर उन पर सजा तय करें। एक बार विश्वास मत प्राप्त करने के बाद दो वर्ष तक अविश्वास प्रस्ताव प्रधानमंत्री के विरूद्व नहीं लाया जा सके परन्तु दो वर्ष पश्चात अविश्वास प्रस्ताव का मौका दें ऐसा संशोधन संविधान में किया जाये तथा रिकॉल के तहत जनता के द्वारा वापस प्रतिनिधियों को हटाया जायें। देश की राजनीति में तीसरे मोर्चे की बात देश के कई नेता कर रहे है, जिसमें एक तरफ भाजपा और उनकी सहयोगी पार्टियों तथा दूसरी तरफ कांग्रेस को छोड़कर शेष राजनीतिक दल एक तीसरी ताकत के रूप में उभर सकते हैं किन्तु अनेक दावों व जोड़–तोड़ की कोशिश के बावजूद तीसरे मोर्चे का न तो कोई स्वरूप उभर सका है और ना ही इसके आसार बन सके हैं। मोर्चे में कौन शामिल होगा इसका संकेत भी नहीं दे सकें हैं। जनता ही इस संदर्भ में निर्णय कर सकती हैं।
2. शिक्षा व्यवस्था में सुधार करना होगा जिसमें नैतिक मूल्यों का समावेश हो क्योंकि समाज में सही नेता व प्रशासक बनाना हैं तो सम्पूर्ण समाज में नैतिक मूल्यों के उत्थान का उन पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक हैं। शिक्षा का तेजी से प्रचार प्रसार कर जनजागरूकता बढ़ानी होगी तथा हम सभी को सरकार के भरोसे नहीं रहकर जहां तक संभव हो सके नागरिकों को मताधिकार का महत्व समझाना होगा। शिक्षा का निजीकरण नहीं किया जाये। सूचना का अधिकार पूरे देश में लागू किया गया, जिससे प्रशासक पारदर्शी बन सकें।
3. आर्थिक दृष्टिकोण से भारत में सरकारी रोजगार बढ़ाना, गरीबी दूर करना, भुखमरी का अभाव हो, टैक्स का दायरा सही हो, अमीर–गरीब का भेद कम हो, सभी क्षेत्रों का विकास हो, किसानों के खाद्यान्नों का सही मूल्य मिलें। डब्ल्यूईएफ की और से जारी समावेशी विकास सूचकांक में इस बात का साफ संकेत है कि भारत को अपने नागरिकों के रोजगार, रहन–सहन के स्तर, पर्यावरण सुधार, नई पीढ़ी के भविष्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण और अन्य नागरिक सुविधाओं में सुधार करने के साथ ही उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाने की दिशा में अभी काफी लम्बा सफर तय करना है। बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी, और कुपोषण के चलते आम आदमी की आय का एक बड़ा भाग स्वास्थय सुविधा और शिक्षा जैसी जरूरी सार्वजनिक सेवाओं में व्यय हो रहा है। इसके कारण बेहतर जीवन स्तर की अन्य जरूरतों की पूर्ति में वें बहुत पिछे रह जाते है। गौरतलब है कि आर्थिक विकास के तमाम दावों के बावजूद भारत में अभी भी बेहद गरीबी में जीवन बसर करने वाले लोगो की संख्या बहुत बड़ी है। भुखमरी व कुपोषण के मामले में तो भारत दुनिया के सबसे निचले पायदान पर खड़े देशों में से एक है। इन सभी हालात से अनुभव किया जा सकता है कि देश की अर्थव्यवस्था को विकास की डगर पर बढ़ने के साथ–साथ आर्थिक विकास के लाभ आम आदमी तक पंहुचाने की राह आसान बनानी होगी। ऐसा संभव हुआ तो सही अर्थो में समावेश विकास होगा।[12]
4. भारत के सभी सरकारी कार्यालयों में अधिकारी एवं कर्मचारियों के रिक्त पदों को भरा जायें, क्योंकि खाली पदो के कारण कार्य का नही होना या अव्यवस्था फैलना तय हैं। यहीं स्थिति सरकार के एक अंश न्यायपालिका में भी न्यायाधीशों की कमी पर खलती है अतः भारत के सभी न्यायपालिकाओं में रिक्त पदों में वृद्वि की जावे यदि तुरन्त न्याय चाहिए तो न्यायालयों की संख्या में वृद्धि के साथ ही न्यायाधीशों की नियुक्ति अविलम्ब की जावें। जहां तक हो सके लोकतांत्रिक तरीके से सभी के प्रति समान भाव रखते हुए सरकारों को अपनी नीतियों, नियमों को बनाना चाहिए तथा उनको सभी क्षेत्रों में समान विकास करवाना चाहिए।
5. संसद में पीएनबी के कर्ज घोटाले पर चर्चा होनी चाहिए थी जो देश के लिए मददगार होती। कावेरी

और आंध्रप्रदेश के मुद्दों पर भी बहस होती तो अच्छा रहता। संसद में हंगामा किसी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। संसद परिसर में स्थित गाँधीजी की प्रतिमा के सामने काली पट्टी लेकर विरोध जताने वाले सांसदों को लगता है जनता की रतीभर भी परवाह नहीं रह गई। संसद चलाने पर प्रत्येक मिनट लगभग तीन लाख रूपए का खर्चा आता है अर्थात् दिन में छः घंटे भी संसद चले तो लगभग दस करोड़ रूपए का खर्च प्रतिदिन होता है और इक्कीस दिन में तो लगभग दौ सौ दस करोड़ रूपए खर्च होते हैं। सांसदों को कोई हक नहीं कि वे जनता के पैसे को यूं अपने अहम के टकराव पर खर्च करे।[13] संसद की मर्यादा बनाए रखना दोनो (पक्ष–विपक्ष) पक्षों का दायित्व है। इसे राजनीति का अखाड़ा बनाने की कोशिशों में लोकतंत्र कमजोर होगा, जो किसी के हित में नहीं होगा। सांसदों व विधायकों के लिए वेतन भत्तों के लिए अलग से नियोजक बोर्ड बनाये जावे तथा वही इनके वेतन भत्तों को तय करे। धार्मिक व जातिय द्वेष फैलाने वाले राजनेताओं व व्यक्तियों को तुरंत जेल में डाल कर उनके विरूद्ध देशद्रोह का मुकदमा चलाकर ताउम्र कैद में कठोर सजा तय करें।

निष्कर्ष

राजनीतिक विकास के मामलों में विशेष रूप से समता, क्षमता व विभिन्नीकरण का जो रूप विचारकों ने दिया है वह अभी भी हमारी व्यवस्था में स्टीक नहीं बैठ पा रही है इस पर प्रयास जारी जरूर है इसे हम प्राप्त करने में अभी बहुत वर्ष लगना तय लगता है। राजनीतिक व्यवस्था के तहत मांगे तो बहुत उठती है वही समर्थन भी मिल जाता है परन्तु निर्णय लेने व नीतियों को बनाने में समय लग जाता है अर्थात एक समस्या के हल होने से पहले ही दूसरी समस्या उत्पन्न हो जाती हैं। यदि सरकार छोटी से छोटी समस्याओं को हल करने लग जाये तो वह दिन भी दूर नहीं होगा कि भारत पुनः सोने की चिड़िया बन जायेगी। भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह सरकार के सकारात्मक रवैये एवं नीतियों का भरपूर सहयोग करें और राष्ट्रीयता की भावना रखे। प्रत्येक नागरिक ईमानदारी से टैक्स चूकाने व सरकार भी इसका सही वितरण राज्यों के बीच करे तो किसी विवाद होने की संभावना नहीं रहेगी।

अंत टिप्पणी

1. *एस.पी. वर्मा – आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, पृ. –140*
2. *लुसियन पाई – पोलिटिकल कल्चर एण्ड पॉलिटिकल डेवलवमेंट, 1965*
3. *आमण्ड तथा पावेल – कम्पेरेटिव पॉलिटिक्स एण्ड़ डवलपमेंट एप्रोच पृ. 25, 26*
4. *सेमुअल. पी. हंटिगटन – पोलिटिकल डवलपमेंट एण्ड़ पॉलिटिकल डिके, वर्ल्ड पॉलिटिक्स 1965, पृ. 386–393*
5. *डेविड ईस्टन – दि पॉलिटिक्ल सिस्टम इन इन्क्वायरी इन टू द स्टेट ऑफ पॉलिटिकल साइंस 1953, ए फ्रेमवर्क फॉर पॉलिटिकल एनालिसिसए 1966, ए सिस्टम्स एनालिसिस ऑफ पॉलिटिकल लाइफ, पृ. 181*
6. *कुलदीप कुमार (वरिष्ठ पत्रकार)– न्यायपालिका के दोहरे मापदण्ड, राजस्थान पत्रिका, शनिवार सम्पादकीय लेख, पृ. 12, 07.04.2018*
7. *राजस्थान पत्रिका, 26 जनवरी 2018, पृ. 08 सम्पादकीय– डॉ. जयंतीलाल भंडारी–''बढ़ गई आर्थिक असमानता की चुनौती''*
8. *कुलदीप कुमार – न्यायपालिका के दोहरे मानदंड, राजस्थान पत्रिका शनिवार 07.04.2018–सम्पादकीय लेख पृ. 12*
9. *राजस्थान पत्रिका, 26 फरवरी 2018, नागौर संस्करण, न्यूज अराउंड पृ. 10*
10. *सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका में खुलासा................... (राजस्थान पत्रिका– 5 गुना बढ़ी'' 26 फरवरी 2018 पृ. 1 एवं 9)*
11. *राजस्थान पत्रिका, नागौर संस्करण, शनिवार 07.04. 2018, पृ. 13*
12. *राजस्थान पत्रिका 26 फरवरी 2018, पृ. 07 सम्पादकीय डॉ. जंयतीलाल भंडारी ''बढ़ गई है आर्थिक असमानता की चुनौती*
13. *संसद की मर्यादा– राजस्थान पत्रिका शनिवार, 07.04. 2018 पृ. 12*